शिक्षाशास्त्री डॉ. अम्बेडकर और वर्तमान समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ0 सुमन
एसोसिएट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, मेरठ

सारांश

भारत में शिक्षा को कभी भी प्राथमिकता नहीं दी गई और इसके बजट को भी। कारण भरात में गरीबी के कारण जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे रोटी कपड़ा और मकान को आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति में शिक्षा को समाज और सरकार दानों के द्वारा द्वितीयक मान जाता रीा है, शिक्षा और अध्यात्म में टकराव, भारतीय समाज में वैज्ञानिकता की कमी और परम्पराओं का वर्चस्व रहा तथा शिक्षा का निजीकरण और व्यापारीकरण आदि ने भारत को आज भी साक्षरता दर की वृद्धि पर अपनी पीठ थपथपा कर वाह–वाही लेने में अपनी उपल्बधि मानने की मजबूरी है। उचच शिक्षा की गणना पर कभी चर्चा की नहीं की जाती है। अभी भी नव जनगणना वर्ष 2011 में साक्षरता दर पर ही बात होती है। न कि शिक्षित लोागें की बात होती है। भारत में शिक्षा बजट को भी दोयम दर्जे की हैसियत प्राप्त है। आने वाले भविश्य में शिक्षा के बाजारीकरण का बोल–बाला होगा। इससे समाज में शिक्षित–साक्षर की खाई बढ़ेगी तथा समाज में शिक्षा के आधार पर भेदभाव और अवसर की उपलब्धता में अंतर से सामाजिक अस्थिरता को बढ़ावा मिलेगा। इसलिए वर्तमान सरकारों द्वारा शिक्षा बजट में बढ़ोत्तरी करके सामाजिक विकास और सामाजिक तानाबाना को मजबूत बनानें में महती भूमिका की निर्वाह करनी होगी।

मुख्य बिन्दु– शिक्षा का बजट, साक्षरता, उच्च शिक्षा और समाज का विकास

संस्कृत भाषा में एक लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है और वह यह है 'न भूतो न भविष्यति', अथार्त ् न भूतकाल में हुआ है और न भविष्य में होगा। भारतवर्ष में विद्वानों के द्वारा मान्य स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी जी, डॉ. सर्वपल्ली राधकृष्णन् और डॉ. जाकिर हुसैन जैस अनेक शिक्षा शास्त्राी हो चुके हैं, लेकिन ये सभी अध्यात्मवाद के अधिक समीप और व्यवहारवाद से अधिक दूर थे। इन शिक्षा शास्त्रियों से भिन्न डॉ. अम्बेडकर महान् शिक्षाविद् रहे है। जॉन डी0 वी0 की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण शिक्षा में व्यवहारवाद के बहुत समीप थे, जिससे उन्होंने शिक्षा के माध्यम से दलितों, शोषितों आरै अस्पृश्यों की समस्याओं का समाधान करके उन्हें सच्चे अर्थों में इंसान बनना सिखाया।

अध्यात्मवादी शिक्षा की परिभाषाएं, मान्यताएं, शैक्षणिक साध्य, शिक्षण पद्धतियां और शिक्षण सामग्री वेदों के कर्मकाण्डों, उपनिषदों में प्रदत्त ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा एवं मोक्ष के इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं। अध्यात्मवादी शिक्षाशास्त्रियों के सिद्धांतों में आध्यात्मिक तत्व अर्थात् ब्रहा, ईश्वर, आत्मा आदि प्राथमिक और

इनके अतिरिक्त अन्य तत्व द्वितीयक एवं अप्रधान होते हैं। आध्यात्मवादी शिक्षाशास्त्रियों के सिद्धांतों में यह बहुत बड़ा लोक विरुद्ध कथन उनकी मान्यता है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनकी शिक्षा का केंद्र बिंदु आत्मा, आत्मतत्व के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करके ईश्वर के समीप जाकर सान्निध्य प्राप्त करना और ब्रह्म में लीन हो जाना है। ऐसी शिक्षा से मानव–जाति में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधन का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता। यदि आज की 21वीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की शिक्षा की अध्यात्मवादी परिकल्पना की जाती है, तो उसे दिवास्वप्न में देखे गए मूर्खों के स्वर्ग के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता।

यदि भारतीय शिक्षाशास्त्र के इतिहास का गंभीर एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाए, तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा की यह लोकोक्ति 'न भूतो न भविष्यति' भारत के महानतम शिक्षाशास्त्री डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर पर निरपेक्ष रूप में खरी उतरती है। इसका दार्शनिक एवं वैज्ञानिक कारण यह है कि दुनिया का अस्तित्व आत्मतत्व, ईश्वर एवं ब्रह्म जैसे काल्पनिक प्रत्ययों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वह अनित्य, अनात्म, अनीश्वर, अब्रह्म एवं प्रतीत्य समुत्पाद के नियम पर निर्भर करता है। इस जगत के अस्तित्व का एक मात्र कारण मनुष्य है और यदि मनुष्य अस्तित्व में आया हुआ नहीं होता, तो जगत का अस्तित्व भी कदापि संभव नहीं हो पाता। इस स्थिति में डॉ. अम्बेडकर के द्वारा अध्यात्मवादियों की भांति शिक्षा का सर्वोच्च साध्य आत्मा के द्वारा परमात्मा, ईश्वर व मोक्ष की प्राप्ति करके ब्रह्म और अद्वैत में विलीन हो जाना नहीं है, बल्कि उनकी शिक्षा का केन्द्र बिंदु भगवान बुद्ध की भांति केवल मनुष्य, मनुष्य के दुखों का अहसास एवं मानव–कल्याण करते हुए 'बहुजन–हिताय, बहुजन–सुखाय लोकानुकम्पाय' था। यह केवल भौतिक जगत में रहकर ही संभव हो सकता है। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर के शिक्षा शास्त्र की नींव अध्यात्मवादी मूल्य नहीं, बल्कि व्यवहारवादी मूल्य है।

डॉ0 अम्बेडकर का शिक्षाशास्त्र मानवतावादी मूल्यों पर निर्भर करता है और उनसे ओतप्रोत है। ये मूल्य आपस में एक–दूसरे के पर्याय और दूध एवं पानी की तरह इस प्रकार मिले हुए हैं, जिन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता डॉ. अम्बेडकर के मानवतावादी शिक्षाशास्त्र के विकास की पृष्ठभूमि के बारे में ज्ञात किया जाए, तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे स्वयं वर्तमान भारत के प्रबुद्ध प्रज्ञावान, उच्चकोटि के अध्ययनशील और उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने न्यूयार्क अमरीका में स्थित कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रतिदिन 18 घण्टे अध्ययन करके 'एडमिन्स्ट्रेशन एण्ड फाइनेंस ऑफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नामक विषय पर एम0 ए0 की उपाधि के लिए शोध–प्रबंध प्रस्तुत किया और उन्होंने 2 जून 1915 को एम0 ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की।

इसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ0 ए0 ए0 गोल्डन वेअर के द्वारा आयोजित सेमिनार में 'कास्ट्स इन इण्डिया–देअर मैकेनिज्म जैनेसिस एण्ड डेवलपमेंट' नामक निबंध मानवशास्त्र के छात्रों के समक्ष पढ़ा था। यह लेख उनकी शोध–कृतियों में सर्वप्रथम पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था। जून 1916 को पीएच. डी. की उपाधि हेतु 'दि नेशनल डिव्हडेंट आफ इण्डिया : ए हिस्टोरीकल एण्ड ऐनालिटिकल स्टडी' नामक शोध–प्रबंध कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया। 20 जून, 1921 को 'प्रोव्हिन्सिल ऑफ इम्पीरियल फाइनेंस इन इण्डिया' नामक शोध–प्रबंध पर लंदन विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें एम0 एससी0 और डी0 एससी0 की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ0 आम्बेडकर से मतभेत होते हुए भी पंडित जवाहर लाल नेहरू अपने विचारों से अधिक प्रगतिशील और आर्थिक विकासवादी व्यक्ति थे। पं0 नेहरू कहते हैं ''मेरी राय में वास्तविक हल तभी निकलेगा जब धार्मिक वर्गों को तोड़ने वाले और सांप्रदायिक सीमाओं को तोड़ने वाले आर्थिक मुद्दे पर उत्तेजित नहीं हो सकता, क्योंकि यह महत्वपूर्ण किंतु अस्थाई है। आखिरकार यह एक गौण मुद्दा है, और व्यापक परिप्रेक्ष्य में कोई वास्तविक महत्व नहीं है।'' इसका तात्पर्य है कि शिक्षा के आधार पर ही धार्मिक आधार पर आर्थिक पाबंदियों को समाप्त कर दशक दर दशक विकास किया जा सकता है।

शिक्षा का सम्बंध आरक्षण के साथ–साथ दलित समाज से भी ताल्लुकात रखता है। लेकिन दलित समाज का राजनीतिक और बौद्धिक नेतृत्व इस सवाल से कतरा रहा है। यह संयोग नहीं है कि यह नेतृत्व मुख्यतः उन्हीं जातियों से हैं जिन्हें आरक्षण का फायदा सबसे अधिक हुआ है। जब इनसे अधिक कठोर प्रश्न पुछे जाते हैं तो इस नेतृत्व से कुछ छिछले जवाब मिलते हैं। ''दलित समाज के भीतर अंतर है ही कहां? आप बेवजह बाल की खाल निकाल रहे हैं, आदि आदि। अब आरक्षण का फायदा उठाना नही चाहते है तो उसकी सजा हमें क्यों? क्या इन दलित समाज का राजनीतिक और आर्थिक उच्च दर्जा प्राप्त लोग अपने दलित समाज को बांटने की कोशिश में एक राजनीतिक साजिश में महत्वपूर्ण भुमिका का निवार्ह कर रहे है? यह महज वोट बैंक का खेल है या कुछ इससे भी अधिक? इस किस्म का जवाब देते हुए वे अक्सर भुल जाते हैं कि आरक्षण विरोधी 'ब्राम्हणवादी' शक्तियां ठीक इन्ही तर्कों का प्रयोग दलित समाज के लिए आरक्षण का विरोध करती रहती हैं। इसलिए केन्द्र सरकार द्वारा नए जातिगत जनगणना आयोग की स्थापना स्वागत योग्य है। आयोग को जनगणना 2001 के आंकड़ों का प्रयोग कर अनुसूचित जातियों के अंदर अलग–अलग जातियों की शैक्षणिक स्थितियों का आंकलन करना चाहिए। इन जातियों के कोटे से केन्द्र और राज्य सरकारों की नौकरियों में आए कर्मचारियों का जातिवार विश्लेषण भी होना चाहिए

शिक्षा एक आंदोलन है अगर शिक्षा अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा नहीं करती तो वह निरर्थक है। डॉ0 आंबेडकर के स्पष्ट विचार थे कि जो शिक्षा आदमी को योग्य न बनाए, समानता और नैतिकता न सिखाए, वह सच्ची शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा तो समाज में मानवता की रक्षा करती है। आजीविका का सहारा बनती है। आदमी को ज्ञान और समानता का पाठ पढ़ाती है। सच्ची शिक्षा समाज में जीवन का सृजन करती है।

डॉ0 आंबेडकर के इस विचार से स्पष्ट है कि शिक्षा का विस्तृत परिप्रेक्ष्य सामाजिक विकास और सरोकार के लिए कितना महत्वपूर्ण है। परन्तु भारतीय समाज में शिक्षा को आज भी दोयम दर्जे का माना जाता है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्र के गरीब और निम्न मध्यम वर्ग के लोगों का अध्ययन करते हैं तो लगभग 90 प्रतिशत परिवार अपने बच्चों को इसलिए पढ़ाते हैं कि वह कहीं अनपढ़ न रह जाएं अथवा समाज में इनके अभिभावक यह कह सके की वह भी अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं। यह तथ्य और भयावह हो जाते हैं जब कक्षा 12वीं तक आते आते लड़कियों को पढ़ाना बंद कर दिया जाता है या इनमें से कुछ की शादी कर दी जाती है और लड़कों को पढ़ाना बंद कर किसी काम में लगा दिया जाता है। ताकि उनसे घर की आय में कुछ मात्रा में इजाफा हो सके और घर के रोजमर्रा जरूरतों को पुरा किया जा सके।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या 2014 में भी ऐसी घटना अब भी घटित हो रही हैं? हम इस बात से अनुमान लगा सकते हैं कि सन् 2011 की जनगणना के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों की संख्या शहरी क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 13.7 प्रतिशत और ग्रामीण प्रतिशत जनसंख्या लगभग 25.9 प्रतिशत तथा भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 21.9 प्रतिशत है। तो यह प्रश्न तर्कसंगत ही है कि बच्चे पढ़े तो कैसे? कारण अभिभावकों के आय की कमी है, स्कूल में अध्यापकों की भीषण कमी और सरकारी प्राथमिक विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों में संरचनात्मक विकास और आधारभूत सुविधाओं की कमी शिक्षा में बढ़ती समस्या और भेदभाव को और बढ़ा देता है।

आजादी से पहले डॉ0 भीमराव आम्बेडकर एक कानूनविद के रूप में जाने जाते थे। बाम्बे लेजिस्लेटिव काउन्सिल में एक कानूनविद की हैसियत से उन्होने 12 मार्च 1927 को भारतीय समाज में शिक्षा के बारे में कुछ जरूरी सवाल उठाए। सन् 1927 के समय भारत में ब्रिटिश सरकार ने जो प्रतिवेदन पेश की उसके मुताबिक देश के स्कूल वाली उम्र के लड़कों को 40 साल और लड़कियों को 300 साल लगेंगे। यह उनके लिए बेहद चिंता का विषय था। कि हमारे देश में शिक्षा के विषय में कुछ विशेष प्रगति नही हुई है जो आज बदस्तूर जारी है। जो यह जथ्य भी है कि भारत में साक्षरता दर बढ़ी है लेकिन वर्तमान सामाजिक चूनौतियों को देखते हुए साक्षरो के स्थान पर शिक्षितों की संख्या में बढ़ोत्तरी होनी चाहिए थी। इसके बेहतरी की उम्मीद की जा सकती है।

डॉ0 भीमराव आम्बेडकर ने सुझाव देते हुए कहा कि ''हमारे बॉम्बे प्रसिडेंसी में दो विभाग हैं जो मेरे अनुसार एक–दूसरे से उल्टा काम कर रहें हैं। हमारे पास शिक्षा विभाग है जिसका काम लोगों को नैतिकता

सिखाना और उनको समाज में रहने लायक बनाना है। दूसरी ओर हमारे पास उत्पाद शुल्क विभाग है जो मेरे विचार से एकदम विपरित दिशा में कार्य कर रहा है। हम इस प्रेसीडेंसी में शिक्षा पर प्रति व्यक्ति 14 आना अर्थात 87.5 पैसे खर्च करते हैं परन्तु उत्पाद शुल्क से हमारी प्राप्ति 2.17 रूपये होती है। मेरे विचार से यह न्याययोचित होगा कि शिक्षा पर हमारा खर्च इस प्रकार तय किया जाए कि लोगों की शिक्षा पर उतना खर्च करें कि जितना उनसे लेते हैं।

शिक्षा पर सामान्य सरकारी व्यय (वर्तमान पूंजी और स्थानान्तरण) सभी क्षेत्रों (स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सेवाओं आदि सहित) पर कुल सातान्य सरकारी व्यय के प्रतिशत के रूप में व्यय किया जाता है।इसमें अंतर्राष्ट्रीय स्रोंतों से सरकार को हस्तान्तरण द्वारा वित पोषित व्यय शामिल है। सामान्यतः सरकार आमतौर पर स्थानीय, क्षेत्रीय और केंद्र सरकारों को संदर्भित करती है।

2013 के लिए भारत का शिक्षा खर्च 14.05 प्रतिशत था, जो 2012 के मुकाबले 0.06 प्रतिशत की वृद्धि थी।

2012 के लिए भारत का शिक्षा खर्च 13.99 प्रतिशत था, जो 2011 के मुकाबले 0.06 प्रतिशत की वृद्धि थी।

2011 के लिए भारत का शिक्षा खर्च 13.56 प्रतिशत था, जो 2010 के मुकाबले 1.73 प्रतिशत की वृद्धि थी।

2010 के लिए भारत का शिक्षा खर्च 11.83 प्रतिशत था, जो 2009 के मुकाबले 0.64 प्रतिशत की वृद्धि थी।

उर्पयुक्त आंकड़ों का विषलेषण करने पर पातें है कि भारत में तीव्र गति से बढ़ने वाली जनसंख्या के अनुपात में शिक्षा खर्च को बजट में न बढ़ाना किस प्रकार की विडम्बना है। एक शिक्षा विज्ञानीयों के शोध बताते है कि बजट सत्र के दौरान चलने भाषण में सबसे कम बहस शिक्षा पर किए जाने वाले खर्चों के निर्धारण पर की जाती है जो कि किसी भी सभ्य समाज के लिए खतरनाक है।

आज जब शिक्षा पर बजट का हिस्सा बढ़ाए जाने के लिए छात्र आंदोलन से लेकर देश के तमाम परिवर्तनकामी लोग सड़कों पर उतर रहें हैं ऐसे में आम्बेडकर के विचार निश्चय ही उनके लिए दिशा देने वाले साबित हो सकते हैं।

इसी बहस का मुद्दा उठाते हुए डॉ0 आम्बेडकर कहते हैं ''हम इस समय शिक्षा पर जो खर्च कर रहे हैं उसके अधिकांश भाग का वास्तव में अपव्यय हो रहा है। प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाला हर बच्चा स्कूल तभी छोड़े जब वह साक्षर हो जाए और वह अपने शेष जीवन में साक्षर बना रहे। लेकिन हम आंकड़ों पर नजर डालें तो हमें पता चलेगा कि प्राथमिक स्कूलों में दाखिल होने वाले हर एक सौ बच्चों में से केवल 18 बच्चे ही कक्षा चार तक पहुंचते हैं, शेष बच्चे यानि 100 में से 82 बच्चे पुनः निरक्षरता की दुनिया में चले जाते हैं।

आज तक हम ड्रॉप आउट की समस्या से नहीं उबर पाए हैं। डॉ0 आम्बेडकर ने देश के एक सजग नागरिक के रूप में और एक कानूनविद के रूप में इस समस्या को उसी समय समझ लिया था। बच्चों को स्कूल पहुंचा देना ही काफी नहीं है। उन्हें बुनियादि शिक्षा प्राप्त करने तक स्कूल से जोड़े रखना भी जरूरी है। ठीक ऐसे ही जैसे कि पेड़ों को खीद–पानी देकर सींचना भी जरूरी है, वर्ना उन्हे मरने में देरी नही लगेगी। ड्रॉप आउट की इस समस्या के बारे में डॉ0 आम्बेडकर कहते हैं कि ''मैं माननीय शिक्षा मंत्री से अनुरोध करता हूं कि वह प्राथमिक शिक्षा पर अधिक से अधिक खर्च करें, कम से कम यह देखने के लिए ही करें कि वह जो खच्र करें अंततः कुछ परिणाम तो निकले। ड्रॉप आउट की समस्या वर्तमान में भी विद्यमान है हां यह हो सकता है कि प्रतिशत में नाममात्र प्रतीत हो लेकिन वह संख्या में भयावह रूप प्रकट करता है। प्रारम्भिक स्तर (कक्षा 1से कक्षा–5) के मामले में प्रति एक हजार बच्चों में 78.3 से 40.8 तक प्राथमिक स्तर (कक्षा 6से कक्षा–8) पर ड्रॉप आउट दर में प्रति एक हजार बच्चों में सन् 1960–61 में 64.9 से 2011–12 में 22.3 तक कमी आई है। माध्यमिक स्तर(कक्षा 9 से कक्षा–12) के मामले में यह 1980–81 में प्रति एक हजार बच्चों में 82.5 से घटकर 50.3 हो गया है। सन् 2011–12 में प्रारम्भिक प्राथमिक, और माध्यमिक सभी श्रेणीयों में प्रति एक हजार बच्चों में 22.3, 40.3 और 50.3 है। अनुसूचित जाति के छात्रों के

प्रारम्भिक, प्राथमिक और माध्यमिक सभी श्रेणीयों में प्रति एक हजार बच्चों में 23.3, 40.2 और 55.3 है। अनुसूचित जनजाति के छात्रों के प्रारम्भिक, प्राथमिक और माध्यमिक सभी श्रेणीयों में प्रति एक हजार बच्चों में 35.3, 57.2 और 65.9 है।

डॉ0 आम्बेडकर ने अगला मुद्दा शिक्षा के व्यवसायीकरण का उठाया। उन्होंने असेंबली में कहा कि ''उन आंकड़ों की जो मुझे यह जानकारी देते हैं कि इस (बॉम्बे) प्रेसीडेंसी में शिक्षा का प्रबंधन कैसे होता है, छानबीन करने से मुझे यह पता लगा कि आर्ट्स कॉलिजों पर जो खर्च किया जाता है उसका 36 प्रतिशत भाग फीस से मिलता है, हाई स्कूलों पर जो खर्च होता है उसका 31 प्रतिशत भाग फीस से आता है। मिडिल स्कूलों पर जो खर्च आता है उसका 21 प्रतिशत भाग शुल्क से आता है। महोदय मेरा यह निवेदन है कि यह शिक्षा का व्यवसायीकरण है। शिक्षा एक ऐसी समाजिक सरोकार का विषय है जो कि सबको मिलनी चाहिए। शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है जो इस आधार पर चलाया जाना चाहिए कि जितना वह खर्च करता है उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए। शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप से सस्ता बनाया जाना चाहिए। चूंकि बाबा साहब भीम राव आम्बेडकर का ध्यान समाज के निचले तबकों पर अधिक था इसलिए वे इस संदर्भ में यह कहना नहीं भूलते कि अब हम इस स्थिति में आ गए हैं कि जब समाज के निचले तबकों पर अधिक था। इसलिए वे इस संदर्भ में यह कहना नहीं भूलते कि अब हम इस स्थिति में आ गए हैं जब समाज के निचले तबके के लोगों के लोागों के बच्चे हाई स्कूल मिडिल स्कूल और कॉलिजों में जा रहे हैं इसलिए इस विभाग की नीति यह होनी चाहिए कि निचले वर्गों के लिए उच्च शिक्षा को जितना सम्भव हो सस्ता बनाया जाए।

शिक्षा के व्यवपक विस्तार में निःसंदेह निजी प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातक, स्नातकोत्तर और निजी विश्वविद्यालयों का भी येागदान है परन्तु इनके व्यवसायीकरण पर सरकार का नियंत्रण नही के बराबर है। इससे आज शिक्षा बेतहशा महंगा होना और भेदभाव भी (अमीरों वाली शिक्षा और गरीबों वाली शिक्षा) व्यापक हुआ है। दूसरी ओर सरकारी संस्थाअें में बढ़ती शिक्षण शुल्क ने इस समस्या को और बढ़ावा दिया है। महाराष्ट्र के स्कूलों में प्रत्येक वर्ष 07 नवम्बर को विद्यार्थी दिवस के रूप में मनाया जाना बेमानी लगता है क्योकि 07 नवम्बर 1900 को डॉ0 भीम राव राम जी आम्बेडकर ने स्कूल में प्रवेश लिया था, तो क्या इस तिथि को विद्यार्थी दिवस मनाया जाए या शिक्षा में पनपने वली गैर–बराबरी को समाप्त करने का प्रयास करें? यह प्रश्न इस शोध कार्य के निष्कर्षों के आधार पर एक बहस का कोना स्थापित करती है कि क्या उपनिवेश काल की भेदभावपूर्ण शिक्षा प्रणाली को छोड़ना असम्भव है? अथवा नई शिक्षा प्रणाली–2020 के तहत भेदभावपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समाप्त किया जा सकेगा। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि यदि सरकारें विद्यार्जन को विषेश महत्व देंगे और शिक्षा के प्रति नागरिकों को जागरूक करेंगे, तो संविधान संगत राष्ट्र निर्माण में रचनात्मक भूमिका निर्वाह करेंगे और लोकतंत्र को पूर्व में बदले दिए गए भीड़तंत्र से भी बचा लेंगे।

संदर्भ ग्रंथ

1. हरकिशन संतोषी, 2009, दलितो के दलित स्थिति, परिस्थिति और संम्भावनाएं, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन।
2. डॉ0 योगेन्द्र यादव, 2009 आरक्षण की दोमुंही राजनीति, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन। ।
3. बाबा साहब भीम राव आम्बेडकर, सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड–3, डां0 आम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली।
4. STATISTICS OF SCHOOL EDUCATION 2011-12 (As on 30th SEPTEMBER 2011) Government of India Ministry of Human Resource Development Bureau of Planning, Monitoring & Statistics New Delhi 2014.
5. https://www.macrotrends.net/countries/IND/india/education-spending